आधुनिक युग में जैन सिद्धान्तों की उपयोगिता

डॉ० विमल कुमार जैन

भारतवर्ष में सहस्राब्दियों से दो संस्कृतियां प्रमुख रही हैं—वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति। वैदिक संस्कृति का मूलाधार प्रारम्भ में सृष्टि वैभव से चमत्कृत हो ईश्वर के प्रति साश्चर्य प्रकृतिपरक रहा। अतः कर्मकाण्ड की प्रधानता रही। तदनन्तर एकान्तवासी आरण्यक ऋषियों ने चिन्तन को महत्त्व देकर ज्ञान का वैभव व्यक्त किया और कालान्तर में इन दोनों ने जनमानस को भक्ति की ओर प्रेरित किया। पुनः विरोध को सामंजस्य में बदलने के लिए इनका समन्वय हुआ। यह प्रक्रिया वेद, आरण्यक उपनिषद्, दर्शन शास्त्र एवं पुराणों का अवलोकन कर सहज समझ में आ जाती है। इससे भिन्न श्रमण संस्कृति प्रारम्भ से ही निवृत्ति परक रही, जिसमें आत्म गुण उपयोग अर्थात् ज्ञान को साध्य मानकर भक्ति एवं क्रिया को साधन माना गया।

ये दोनों संस्कृतियां प्रारम्भ से ही एक-दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। जैन निवृत्ति ने वैदिक विचार धारा को और वैदिक भक्ति ने जैन चिन्तन को प्रभावित किया। जैन धर्म शाश्वत सिद्धान्तों पर आधृत है अतः एक सनातन विचारधारा है। इन सिद्धान्तों का सर्वप्रथम विवेचन आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने किया था। तदुपरान्त चौबीसवें तीर्थंकर महावीर से पूर्व बाईस तीर्थंकरों ने अपने समय में इनका प्रतिपादन किया, वैदिक ग्रन्थों में ऋषभदेव के अतिरिक्त अजितनाथ एवं नेमिनाथ आदि का उल्लेख भी है तथा ऋषभदेव को तो अवतार माना गया है। अन्त में उन सिद्धान्तों का निरूपण आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भगवान् महावीर ने किया, जो धर्म शास्त्रों में उपलब्ध है।

भगवान् महावीर श्रमण संस्कृति के प्रमुख उन्नायक थे। उनके समय में छः महात्मा और थे, जो श्रमण संस्कृति के प्रवक्ता थे। पूरण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केश कम्बल, प्रकुधकात्यायन, संजय वेलटिठपुत्र और गौतम बुद्ध। परन्तु इनमें से आज केवल भगवान् बुद्ध की वाणी ही ग्रन्थों में संग्रहीत है और विश्व के अनेक देशों में प्रचारित है।

भगवान् महावीर ने जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया था, वे किसी वर्ग विशेष से सम्बद्ध न होकर सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक थे अतः कूपमण्डूकता की परिधि से परे 'जनहिताय' थे। यही कारण है कि वे जितने उस समय उपयोगी थे, आज भी हैं और भविष्य में भी सदा रहेंगे।

महावीर की समकालीन परिस्थितियां सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से बड़ी विषमतापूर्ण थीं। समाज में ब्राह्मणों की प्रमुखता थी, राजनीति, समाज एवं शिक्षा आदि के संचालक वे ही थे। शासक क्षत्रिय अवश्य थे परन्तु मन्त्री, राजगुरु, राजवैद्य और राजज्योतिषि पदों पर वे ही आसीन थे। यद्यपि वे विद्वान् होते थे, उनमें त्याग भी था किन्तु ऊंच-नीच के भेदभाव में उनका बहुत हाथ था। शासक उन्हीं के संकेत पर चलते थे। उन्हीं के कारण कर्मकाण्ड का अत्यधिक प्रचार था अतः यज्ञ प्रायः हुआ करते थे, जिनमें पशु बलि तो साधारण थी ही, नरबलियां भी दी जाती थीं। मध्यम और निम्न वर्ग आर्थिक विषमता से घुट रहा था तथा स्त्री समाज अनेक अधिकारों से वंचित था।

भगवान् महावीर ने इन भयंकर परिस्थितियों में मूक पशुओं और निस्सहाय लोगों की आह सुनी, आर्थिक विषमता के भार से दबे मध्यम एवं निम्न वर्ग की दुरवस्था को देखा तथा स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर दृष्टिपात किया तो उनकी आत्मा कराह उठी और वे क्रान्तिदूत के रूप में समाज के समक्ष आये तथा उन्होंने सहअस्तित्व का उपदेश दिया। सबल हाथों को इन बुराइयों का उन्नायक मानकर उन्होंने आध्यात्मिक क्रान्ति द्वारा ही इन्हें दूर करने का निर्णय लिया और वे त्यागी तपस्वी तथा ज्ञानी बनकर इस कार्य में अग्रसर हुए। महात्मा बुद्ध ने भी इसी मार्ग को अपनाया परन्तु कालान्तर में अपनी भिन्न सारणी द्वारा उन्होंने इस लक्ष्य के सम्पादन में प्रयत्न किया।

यहां जैन धर्म के उन उपयोगी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालना आवश्यक है जिनका तात्कालिक परिस्थितियों को देखकर जनहित के लिए भगवान् महावीर ने प्रतिपादन किया था और जो उस समय की भांति आज भी उतने ही उपयोगी हैं। जनहित के लिए सर्वप्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है हनन प्रवृत्ति का प्रतित्याग और इसके लिए अनिवार्य है सत्य, सन्तोष, संयम और त्याग का ग्रहण तथा दृष्टिकोण में उदारता। ये ही हैं सुदृढ़ समाज के लिए रामवाण औषधियां, जिनके बिना विश्व की कोई प्रणाली न स्वस्थ हो सकती है और न पुष्ट। इसीलिए उन्होंने पांच व्रतों का सुविस्तृत विवेचन किया तथा दृष्टि की व्यापकता पर बल दिया।

ये पांच व्रत हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। दृष्टि की व्यापकता या उदारता को उन्होंने अनेकान्त या स्याद्वाद संज्ञा दी। **अहिंसा परमो धर्मः** अहिंसा को परम धर्म इसलिए कहा गया क्योंकि शेष उसके आचरण पर स्वयं अनुगमन करते हैं। अहिंसक की दृष्टि भी उदार हो जाती है। इसीलिए अहिंसा जैन दर्शन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

अहिंसा : समताः एवं विश्व शान्ति :

अहिंसा की धुरी समतातत्त्व पर घूमती है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने अहिंसा की व्याख्या इस प्रकार की है—

कुलजोणिजीवमग्गण-ठाणाइं सुजाणऊणजीवाणं।
तयेसारम्भणियत्तण-परिणामों होइ पढमवंदं॥

अर्थात् कुल, योनि और मार्गणा आदि द्वारा जीवों के स्थानों को जानकर भेदभाव के बिना उनमें आरम्भ वृत्ति से हटना अहिंसा है। इससे स्पष्ट है कि समस्त प्राणियों में समभाव अहिंसा का आधार है।

श्रमणों के लिए जहां हिंसा का पूर्णतः वर्जन है, वहां सामाजिक के लिए लोक-व्यवहार के पालनार्थ कुछ मर्यादायें हैं। वह सापराध को दण्ड दे सकता है। उसके लिए स्थूल रूप में अहिंसा का पालन आचार्य उमास्वामी के शब्दों में इस प्रकार हो सकता है :—

मैत्रीप्रमोद कारूण्यमाध्यस्थ्यानि च-
सत्वगुणाधिक क्लिश्यमाना ऽविनयेषु।

अर्थात् सज्जनों के प्रति मैत्री, गुणी जनों के प्रति प्रमोद भाव किलष्ट प्राणियों के प्रति कारूण्य और विरोधवृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थभाव (उदासीनता) रखना।

संसार के समस्त विप्लवों का मूल रागद्वेष है। इष्ट के प्रति राग और अनिष्ट के प्रति द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या एवं मात्सर्य आदि दुर्भावनाओं को प्राणियों में जागृत करते हैं और ये विचार हिंसा के लिये प्रेरणा देते हैं। इन्हीं के वशीभूत होकर व्यक्ति स्वार्थ से अन्धा हो जाता है और वह अन्य व्यक्तियों के प्रति अहित की बात सोचता है, अपशब्द कहता है, प्रतिशोधवश छेदन-भेदन एवं मरण-मारण करता है, असत्य बोलता है, चौर्य कर्म करता है, बलात्कार तथा घात तक कर डालता है और धन धान्य—क्षेत्रादि का अधिकाधिक संग्रह कर दूसरे को उनके अधिकार से वंचित करना चाहता है। इनके परिणाम स्वरूप ही वह भयंकर लूटमार, अग्निकाण्ड और युद्धों का कारण बनता है। इस प्रकार वह विश्व के लिए एक महान् संकट का कारण होता है। अतः विश्व शान्ति के लिए अहिंसा अनिवार्य है। महाभारत में तो इसीलिए अहिंसा को परम धर्म, परम तप और परम सत्य ही नहीं, धर्म का प्रवर्तक भी माना है—

अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं, ततो धर्म प्रवर्त्तते॥

यह विश्वविदित एक तथ्य है कि सर्व प्रथम भगवान् महावीर ने ही अहिंसा का विशद विवेचन किया और उसका व्यापक प्रभाव विश्व के समस्त धर्म, दर्शन एवं साहित्यों पर पड़ा। महात्मा बुद्ध स्वयं प्रारम्भ में जैन दीक्षा लेकर त्यागी बने थे और भगवान् महावीर के समकालिक एवं समक्षेत्रीय होकर उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा एवं मोक्ष मार्ग से प्रभावित हुए थे। उन्होंने मज्झिम निकाय में भगवान महावीर के इस मार्ग की प्रशंसा भी की है। महाभारतादि वेदानुयायी ग्रन्थों में भी अहिंसा का प्ररूपण जैन अहिंसा के प्रभाव का ही परिणाम है। क्योंकि उनसे पूर्व वैदिक धर्म में यज्ञादि अनुष्ठानों में हिंसा मान्य थी। आगे चलकर ईसाई और मुस्लिम धर्म भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। बाइबल में तो यहां तक कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल और कर दो। कुरान में भी स्थान स्थान पर रहम का गुणगान है, अल्लाह सबसे बड़ा रहिम है।

इनके अतिरिक्त विश्व के बड़े-बड़े दार्शनिक साहित्यकार एवं नेता भी इससे प्रभावित हुए बिना न रहे। सर्वश्री टालस्टाय, रोम्मो रोलां एवं महात्मा गांधी आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। महात्मा गांधी ने तो अहिंसात्मक सत्याग्रह से ही विश्व की महान् शक्ति अंग्रेजी सत्ता को भारत से निकल जाने के लिए विवश कर दिया।

अहिंसक व्यक्ति असत्य का आचरण नहीं कर सकता, दूसरों के पदार्थ और अधिकारों को नहीं छीन सकता, वासनावश अनाचार की प्रवृत्ति से रुकेगा और अधिक परिग्रह के लिए विधि-विरुद्ध कार्य न करेगा वरन् उदार हो समाज एवं राष्ट्र की सहायता करेगा। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार अहिंसक के आचार में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की भावना स्वयं आ जाती है। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा है तथा विश्व शान्ति का प्रमुख कारण माना है।

अपरिग्रह: सर्वोदय एवं समाजवाद :

पांच व्रतों में जनहित के लिए अपरिग्रह का बड़ा महत्त्व है। यों तो अहिंसा का पालन करने वाला अपरिग्रह का पालन न्यूनाधिक रूप में करेगा ही तो भी समाज से विषमता दूर करने के लिए जीवन में इसका आचरण अत्यावश्यक है।

भगवान् महावीर के समय से जैन धर्म को निग्रन्थ धर्म भी कहा गया है। ग्रन्थ या ग्रन्थि से तात्पर्य परिग्रह से है। अत: परिग्रह-त्याग की महिमा होने से इसे निग्रन्थ संज्ञा दी गई। परिग्रह को मूर्च्छा भी कहते हैं क्योंकि ग्रहण में आसक्ति होती है और वही प्रगाढ़ होकर मूर्च्छा का रूप धारण कर लेती है। मानव परिग्रह वश निजात्मभाव को भूल जाता है और परभाव में लीन हो जाता है अतः वह स्वार्थवश जन, समाज एवं राष्ट्रहित की चिन्ता नहीं करता वरन् अशान्ति के कारण जुटाता रहता है।

संग्रह की भावना वश व्यक्ति झूठ बोलता है, चोरी करता है, कम तोलता है—नापता है, छलकपट करता है, धोखा देता है, षड्यन्त्र रचता है, हत्यायें करता और यहां तक कि वह भीषण युद्ध भी करता है। अत: यदि समाज से इन दोषों को दूर करना है और विषमता हटाकर समता लानी है तो परिग्रह की भावना को संयत करना आवश्यक है, इसे मर्यादित करना होगा। जैन दर्शन के अनुसार व्यक्ति को अपनी आवश्यकता से अधिक द्रव्य, धन-धान्य और भूमि आदि को समाज एवं राष्ट्र को सौंपना होगा। इसी का नाम समाजवाद है और इसी में सर्वोदय निहित हैं।

साम्यवाद के महान् व्याख्याता कार्ल-मार्क्स ने साम्यवाद की परिभाषा करते हुए लिखा है कि मानव समाज में निर्धनता एक अभिशाप है। जब तक समाज में विषमता रहेगी, शांति नहीं होगी और जब तक सम्पत्ति एवं सुख-साधनों का कुछ लोगों के हाथों में एकाधिकार है तब तक विषमता रहेगी अतः विश्व शान्ति एवं सुख समृद्धि के लिए यह एकाधिकार समाप्त होना चाहिए यही तो अपरिग्रह है। परन्तु आज के साम्यवाद में वर्ग-भावना घृणा एवं हिंसा का प्राबल्य है अतः अपरिग्रह सर्वोदयी समाजवाद के अधिक समीप है। इस सर्वोदयी समाजवाद का बड़ा ही विशद विवेचन अपरिग्रह के रूप में जैन धर्म में हुआ है।

यह अपरिग्रह नियम आभ्यन्तर और बाह्य रूप से दो प्रकार का है। आभ्यन्तर तो आत्मभावों में त्याग से सम्बन्ध रखता है। और इसी के परिणाम स्वरूप बाह्य परिग्रह का त्याग होता है। आज के सन्दर्भ में बाह्य परिग्रह को समझना आवश्यक है। बाह्य परिग्रह दस प्रकार की होती हैं—

बाहिर संगा खेत्तं वत्थुं धणधण्णकुप्पभंडाणि।
दुपय-चउप्पय-जाणाणि चेव सयणासणे य तहा॥

अर्थात्, क्षेत्र—भूमि, पर्वत आदि, वास्तु-गृह, दुकान आदि, धन-रुपया, सोना, चांदी, रत्न आदि धान्य-गेहूं, चना आदि, कुप्य—सभी प्रकार के वस्त्र, भाण्ड—सभी प्रकार के बर्तन, यान—सभी प्रकार के वाहन, शयनासन—सोने और बैठने के सभी उपकरण, द्विपद—सभी पुत्रादि तथा दास-दासी आदि और चतुष्पद—हाथी-घोड़ा, गाय-भैंस आदि पशु।

इन सभी परिग्रहों को मर्यादित करना और शेष को समाज हित में त्यागना ही अपरिग्रह है। इससे जाना जा सकता है कि जैन धर्म में कितनी गम्भीरता से सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए अपरिग्रह का विवेचन हुआ। इतनी विस्तृत व्याख्या आज के समाजवादी अर्थशास्त्री भी नहीं कर पाये हैं। और विशेषता यह रही कि लोग इसका आचरण करें अतः अपरिग्रह को धर्म का अंग माना गया और है भी ऐसा ही क्योंकि आत्मस्वभाव या कर्त्तव्य का नाम ही धर्म है।

स्याद्वाद या अनेकान्त : उदार दृष्टिकोण :

संसार में हठ या दुराग्रह प्रायः संघर्ष का कारण हो जाता है। क्योंकि इसमें अहंकार और परहीनता का भाव निहित रहता है। इसीलिए वर्ग, समुदाय एवं धर्मों में भेदभाव का विषबीज अंकुरित होता है और वही समाज के विनाश का कारण बनता है। इतिहास में वैदिक-बौद्ध, ईसाई-मुस्लिम, हिन्दू-मुस्लिम एवं शैव-वैष्णव आदि के संघर्ष इसके प्रमाण हैं। इसके विपरीत समाज में सर्वांगीण सामंजस्य के लिए विश्व को भगवान् महावीर की सबसे बड़ी देन है स्याद्वाद या अनेकान्त सिद्धान्त। उन्होंने कहा कि पदार्थों को अनेक दृष्टिकोणों से देखो, वस्तु को एक ही रूप में न देखकर उसे विविध रूपों से निहारो, जैसे—गाय पशु भी है, प्राणी भी है, चतुष्पद भी है; मनुष्य प्राणी भी है, पिता भी है, पुत्र भी है, चाचा भी है, भतीजा भी है, प्रोफेसर भी है और वकील भी है इत्यादि। एक व्यक्ति ने कहा कि यह वस्तु ऐसी है, महावीर ने कहा स्यात् ऐसी भी है और स्यात् ऐसी भी। इसलिए उन्होंने नय और सप्तभंगियों का निरूपण किया। आत्मा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य रूप है परन्तु व्यवहार से वह प्राणी है, मानव है, गाय है और चींटी भी है। यह सापेक्ष सिद्धान्त है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के रूप का विवेचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी विभिन्न पर्याय एवं अन्य पदार्थों की अपेक्षा से होता है। आइंस्टीन का सापेक्षवाद इसी सिद्धान्त से प्रभावित है।

इस सिद्धान्त की विशेषता यह है कि जब विभिन्न दर्शन एक-दूसरे का खण्डन करते हैं जैन दर्शन इस सिद्धान्त के द्वारा यह कहकर सामंजस्य ला देता है कि यह भी सत्य है और यह भी। केवल आवश्यकता है दृष्टिकोण बदलने की और दूसरे को समझने की। इस प्रकार इस सिद्धान्त ने सहिष्णुता, उदारता, सौहार्द, प्रेम को जन्म दिया और रक्तपिपासा को शान्त किया। यही कारण है कि जैन समाज सदा और सर्वत्र संघर्ष और विरोध से बची रही। इसी सिद्धान्त से उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय भी किया।

आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में लिखा है :—

न वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्माद्‌ विस्सरूवं भणियं दवियं ति णाणीहि॥

अर्थात् आत्मा अपने गुण ज्ञान से भिन्न नहीं है और क्योंकि ज्ञान अनेक हैं अतः पदार्थ के रूप भी ज्ञानियों ने अनेक कहे हैं।

वास्तव में यह सिद्धान्त विवाद, कलह एवं संघर्ष के समय उसे शान्त करने के लिए अग्नि पर जल का कार्य करता है। विश्व के सभी विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्ध-णमोकार मन्त्र में 'णमो लोए सव्वसाहूणं' कहकर लोक में विद्यमान सभी साधुओं को नमस्कार किया गया है। केवल जैन साधु को ही नहीं वरन् भाव से प्रत्येक साधु को नमस्कार है, चाहे वह कोई भी हो।

कतिपय क्रांतिकारी कदम :

इन दार्शनिक सिद्धांतों के अतिरिक्त भगवान् महावीर ने समाज में वैषम्य और विरोध दूर करने के लिए कुछ क्रान्तिकारी और बातें भी कहीं, जैसे—समाज में कोई ऊंच-नीच नहीं है तथा सभी वर्ग समाज का एक सम्माननीय अंग है। उस समय वर्ण व्यवस्था बड़ी कठोरता से प्रचलित थी तथा तथाकथित निम्न वर्ग के लोगों के साथ बड़ा दुर्व्यहार होता था और स्त्री वर्ग को हीन भावना से देखा जाता था। भगवान् महावीर ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को जन्म से न मानकर कर्म से माना :—

कम्मुणा होइ बम्मणो, कम्मुणा होइ खत्तियो इत्यादि।

आचार्य अमितगति ने स्पष्ट कहा है कि आचार-भेद से ही जाति-भेद की कल्पना हुई है, ब्राह्मणादि जाति कोई नियत और वास्तविक नहीं है—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
न जाति ब्राह्मणाद्यस्ति नियता क्वापि तात्त्विकी॥

उन्होंने **शीलवन्तो गताः स्वर्गं नीचजातिभवा अपि**—कहकर नीचकुलोत्पन्न व्यक्तियों को शुद्धाचरण के पालन से स्वर्ग की प्राप्ति तक बतलाई है।

श्री देवसेनाचार्य ने तो यहां तक कहा कि जो भी व्यक्ति, चाहे वह ब्राह्मण हो या और कोई अन्य, इस जैन धर्म का पालन करता है वही श्रेष्ठ श्रावक है क्योंकि श्रावक के सिर पर कोई ऐसी मणि तो लगी नहीं होती जो उसे श्रावक जनाती हो :—

एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दवि कोइ।
सो सावहु किं सावयइं अण्ण किं सिरिमणि होइ॥

भगवान् महावीर ने कहा कि प्रत्येक भव्य आत्मा परमात्मा बन सकती है चाहे वह किसी जाति या वर्ग से सम्बन्ध रखती हो। जाति कुल, वर्ग, देश एवं कालादि से परे प्रत्येक सद्व्यक्ति को मुक्ति का अधिकार है, वह स्वयं ईश्वर हो सकता है—यह उनकी एक बड़ी स्तुत्य देन है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में 'ण हु होदिमोकवमग्गो लिंग' कहकर श्रमण और श्रावकों के लिए लिंग (वेष) का कोई महत्त्व नहीं बतलाया। उन्होंने सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र को ही महत्त्व दिया, साधक चाहे कोई हो।

इस प्रकार जहां उन्होंने समाज से ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाया वहां नारी समाज के उत्थान पर भी बल दिया। महासती चन्दनबाला का वृत्त इसका उदाहरण है। जिनके उद्धारार्थ भगवान् स्वयं उनके घर पधारे थे।

इन सिद्धान्तों एवं सुधार की बातों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीर महान् तत्त्वदर्शी थे जिन्होंने सभी कालों एवं क्षेत्रों में विश्वहित की भावना से इनका प्रतिपादन किया। समाज की सुदृढ़ नींव यदि इन पर रखी जाय जैसा कि पहले दर्शाया जा चुका है तो वह पतन की ओर नहीं जा सकती, न उनमें विग्रह की दीमक लग सकती है और न संघर्ष के विविध कारणों की टांकी ढहा सकती है। अतएव यह विश्वास से कहा जा सकता है कि जैन धर्म के ये सिद्धान्त जितने उस समय उपयोगी थे, आज भी हैं और सदा रहेंगे क्योंकि आधुनिक युग महान् संघर्ष, भ्रष्टाचार एवं ऊंचनीच के भावों से ग्रसित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org